

# मेरी शिक्षाशास्त्रीय आस्था

जॉन ड्यूवी

अनुवाद : योगेन्द्र दत्त

क्षेत्रीय प्रारंभिक शिक्षा संसाधन केंद्र (आरआरसीईई)

केंद्रीय शिक्षा संस्थान

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

स्रोत : जॉन ड्यूवी, माई पेडागॉजिक क्रीड, स्कूल जरनल, खंड 54 (जनवरी 1897), पृष्ठ 77-80

© आरआरसीईई, 2010,  
क्षेत्रीय प्रारंभिक शिक्षा संसाधन केंद्र (यूएसआरएन-डीयू)  
कमरा नम्बर 106, सीआईई एनेक्सी  
अकेडेमिक रिसर्च सेंटर, गुरु तेग बहादुर मार्ग  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007  
टेलीफैक्स : 011-27667434  
ईमेल : usrn.du@gmail.com

यह अनुवाद सर रतन टाटा ट्रस्ट, बॉम्बे हाउस, होमी मोदी स्ट्रीट, मुम्बई-400001 के सहयोग से संपन्न हुआ है।

## मेरी शिक्षाशास्त्रीय आस्था

जॉन ड्यूवी

स्कूल जरनल, खंड 54 (जनवरी 1897), पृष्ठ 77-80

### पहली आस्था : शिक्षा क्या है

मेरा मानना है कि सारी शिक्षा मानव सभ्यता की सामाजिक चेतना में व्यक्ति की हिस्सेदारी से शुरू होती है। यह प्रक्रिया अचेत रूप से लगभग जन्म के समय ही शुरू हो जाती है और रह-रह कर हमारी शक्तियों को आकार देती रहती है, चेतना को परिपूर्ण करती है, आदतें गढ़ती है, हमारे विचारों को दीक्षित करती है और भावनाओं व अहसासों को जन्म देती है। इस अचेत शिक्षा के जरिए व्यक्ति धीरे-धीरे उन बौद्धिक एवं नैतिक संसाधनों में हिस्सेदारी करने लगता है जिनको मानवता ने मिलकर इकट्ठा किया है। वह सभ्यता की पोषित पूंजी का उत्तराधिकारी बन जाता है। विशुद्ध औपचारिक और तकनीकी शिक्षा भी इस सामान्य प्रक्रिया से अलग नहीं जा सकती। यह शिक्षा इस प्रक्रिया को केवल व्यवस्थित कर सकती है या उसे खास दिशा में मोड़ सकती है।

मेरा मानना है कि सच्ची शिक्षा बच्चे की सामाजिक परिस्थितियों की अपेक्षाओं के द्वारा बच्चे की शक्तियों को उत्तेजित करके ही दी जा सकती है। इन अपेक्षाओं के जरिए उसे एक समूह के सदस्य के रूप में आचरण करने, अपनी मूल संकुचित क्रियाओं व भावनाओं से ऊपर उठने और खुद को अपने समूह के कल्याण के प्रस्थानबिंदु के रूप में देखने का हौसला मिलता है। उसकी क्षमताओं पर दूसरे लोग जो प्रतिक्रियाएं देते हैं उनके जरिए वह इस बात के प्रति अवगत होता है कि सामाजिक धरातल पर उन गतिविधियों का क्या अर्थ है। इस तरह, उन गतिविधियों का जो मूल्य होता है वह वापस उनमें प्रतिबिंबित होने लगता है। उदाहरण के लिए, बच्चे के सहज तुतलाने पर जो प्रतिक्रियाएं आती हैं उनके माध्यम से बच्चा यह जान जाता है कि उसकी तुतलाहट का क्या अर्थ है। इसके बाद उसकी तुतलाहट को एक व्यवस्थित भाषा में रूपांतरित कर दिया जाता है और इस तरह बच्चा उन विचारों व भावनाओं की संचयी संपदा से जुड़ जाता है जो अब भाषा में संकलित हो चुकी हैं।

मेरा मानना है कि इस शैक्षिक प्रक्रिया के दो पहलू होते हैं। एक मनोवैज्ञानिक, और दूसरा समाजशास्त्रीय पहलू। ये दोनों पहलू ऐसे हैं जिनको एक-दूसरे के मातहत नहीं रखा जा सकता। न ही आप इनमें से किसी एक को नजरअंदाज करने का जोखिम उठा सकते हैं। इन पहलुओं में से मनोवैज्ञानिक पहलू ज्यादा आधारभूत महत्व का होता है। बच्चे का अपना सहजज्ञान और शक्तियां उसके लिए ऐसी सामग्री होती हैं जहां से सारी शिक्षा शुरू होती है। बच्चा अपने शिक्षक से स्वतंत्र तौर पर निजी पहल के जरिए जो गतिविधियां करता है यदि शिक्षक उनसे जुड़ने की चेष्टा नहीं करता है तो ऐसी शिक्षा बाहर से पड़ने वाला दबाव मात्र बनकर रह जाती है। यह शिक्षा बाहरी तौर पर कुछ खास नतीजों को जन्म जरूर दे सकती है मगर उसे सच्चे अर्थों में शैक्षिक परिणाम नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक संरचना और गतिविधियों को समझे बिना दी जाने वाली शिक्षा अस्त-व्यस्त और मनमानी रह जाती है। अगर यह शिक्षा बच्चे की गतिविधि के साथ मिल जाती है तो उसे एक बल मिलता है; अगर शिक्षा और बच्चे की गतिविधि में साम्य पैदा नहीं हो पाता है तो दोनों में घर्षण और विखंडन शुरू हो जाता है, इससे बच्चे का स्वभाव अंकुश का शिकार होने लगता है।

मेरा मानना है कि बच्चे की शक्तियों की समुचित व्याख्या के लिए, उन्हें भली प्रकार समझने के लिए सामाजिक परिस्थितियों का, सभ्यता की वर्तमान दशा का ज्ञान बहुत अनिवार्य है। बच्चे के पास अपना सहजज्ञान और प्रवृत्तियां होती हैं मगर जब तक हम उन्हें उनके सामाजिक सममूल्यों में रूपांतरित नहीं कर सकते तब तक यह नहीं जान सकते कि उनका क्या अर्थ है। हमें इस योग्य होना चाहिए कि हम उनके इस सहजज्ञान और प्रवृत्तियों को सामाजिक अतीत में ले जा सकें और उन्हें सभ्यता की पिछली गतिविधियों की विरासत के रूप में देख सकें। साथ ही हमें इस बात में भी सक्षम होना चाहिए कि हम उन्हें भविष्य की दिशा से जोड़ें और देखें कि उनके परिणाम और लक्ष्य क्या होंगे। अभी मैंने जो उदाहरण दिया था उसमें बच्चे की तुतलाहट में भविष्य की ऐसी सामाजिक अंतर्क्रियाओं और बातचीतों

का विश्वास व संभावना दिखाई देती है और यह क्षमता हमें बच्चे के उस सहजज्ञान के साथ तारतम्य बिठाने में मदद देती है।

मेरा मानना है कि मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्ष आपस में जैविक तौर पर जुड़े हुए हैं और शिक्षा को दोनों के बीच एक समझौते के रूप में या एक के ऊपर दूसरे को थोपने के रूप में नहीं देखा जा सकता। कई लोगों का कहना है कि शिक्षा की मनोवैज्ञानिक परिभाषा बंजर और सतही है। उनका कहना है कि इससे हमें सारी मानसिक शक्तियों के विकास का विचार तो मिलता है मगर इस बात का कोई अंदाजा नहीं होता कि इन शक्तियों का किन चीजों के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। दूसरी ओर उनका यह भी तर्क है कि शिक्षा की सामाजिक परिभाषा को जब सभ्यता के हिसाब से ढाल लिया जाता है तो वह एक जबरन और बाहरी प्रक्रिया बन जाती है जिससे व्यक्ति की स्वतंत्रता पहले से तय सामाजिक एवं राजनैतिक हैसियत के अधीन चली जाती है।

मेरा मानना है कि ये दोनों ही आपत्तियां सही हैं बशर्ते आप एक पक्ष को दूसरे से काटकर उसके खिलाफ ये आपत्तियां उठाएं। कोई शक्ति वास्तव में क्या है, ये जानने के लिए हमें जरूर पता होना चाहिए कि उसका लक्ष्य, इस्तेमाल या उपादेयता क्या है। और यह बात हम तब तक नहीं जान सकते जब तक व्यक्ति को सामाजिक संबंधों में सक्रिय रूप में न देखते हों। दूसरी ओर, मौजूदा परिस्थितियों में हम बच्चे को जो एकमात्र समायोजन उपलब्ध करा सकते हैं वह उसे उसकी सारी शक्तियों पर नियंत्रण प्रदान करने से ही प्राप्त किया जा सकता है। लोकतंत्र और आधुनिक औद्योगिक परिस्थितियों के उदय के फलस्वरूप अब निश्चित शब्दों में यह कहना असंभव हो गया है कि 20 साल बाद सभ्यता की शक्ति सूरत कैसी होगी। लिहाजा, अब बच्चे को किन्हीं खास परिस्थितियों के लिए तैयार करने की योजना बनाना असंभव है। बच्चे को भावी जिंदगी के लिए तैयार करने का मतलब है उसे अपने ऊपर नियंत्रण प्रदान करना। इसका मतलब है कि उसे इस तरह प्रशिक्षित किया जाए कि वह अपनी सारी क्षमताओं का पूर्ण और तुरंत इस्तेमाल कर पाए; कि उसकी आंख और कान और हाथ फौरन उसकी इच्छा से काम करने को तैयार हों, कि उसकी निर्णय क्षमता उन परिस्थितियों को समझने में सक्षम हो जिनमें उसके इन अंगों को काम करना है। इसके लिए उसकी कार्यकारी शक्तियों को किफायती और कुशल ढंग से काम करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। अगर व्यक्ति की अपनी शक्तियों, अभिरुचियों और सरोकारों पर लगातार ध्यान न दिया जाए तो इस तरह के समायोजन तक पहुंचना असंभव है। संक्षेप में, मेरा मानना है कि जिस व्यक्ति को शिक्षा दी जानी है वह एक सामाजिक प्राणी है और समाज मनुष्यों का एक जैविक संगठन है। यदि हम बच्चे के परिवेश के सामाजिक कारक को समाप्त कर दें तो हमारे पास एक अमूर्त स्थिति बचती है। अगर हम समाज से व्यक्तिगत कारक को हटा दें तो हमारे पास एक निष्क्रिय और निष्प्राण पदार्थ के अलावा कुछ और नहीं बचेगा। लिहाजा, शिक्षा उस बच्चे की क्षमताओं, रुचियों और आदतों में एक मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि के साथ ही शुरू होनी चाहिए। हर बिंदु पर उसे इन्हीं बातों की कसौटी पर नियंत्रित किया जाना चाहिए। इन शक्तियों, रुचियों और आदतों की रह-रह कर व्याख्या की जानी चाहिए - हमें लाजमी तौर पर पता होना चाहिए कि इनका अर्थ क्या है। उनके सामाजिक समकक्षों के रूप में रूपांतरित किया जाना चाहिए - उन्हें इस रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए कि वे सामाजिक सेवा की दृष्टि से किस बात के योग्य हैं।

### **दूसरी आस्था : स्कूल क्या है**

मेरा मानना है कि स्कूल बुनियादी तौर पर एक सामाजिक संस्था है। क्योंकि शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है इसलिए स्कूल सामुदायिक जीवन का वह रूप मात्र है जिसमें उन सारी एजेंसियों को संकेंद्रित कर दिया जाता है जो सभ्यता के विरसे में मिले संसाधनों में बच्चे की साझेदारी की संभावना को सबसे प्रभावी ढंग से साकार कर सकती हैं और उसकी शक्तियों को सामाजिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग कर सकती हैं।

मेरा मानना है कि इसीलिए शिक्षा जीने की एक प्रक्रिया है न कि भावी जीवन की तैयारी का चरण है।

मेरा मानना है कि स्कूल को अनिवार्य रूप से वर्तमान जीवन का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। उसे बच्चे के यथार्थ और बहुत महत्वपूर्ण जीवन का प्रतिनिधित्व करना चाहिए, ऐसा जीवन जिसे बच्चे अपने घर, मोहल्ले और खेल के मैदान में जीते हैं।

मेरा मानना है कि जो शिक्षा जीवन के जीने के योग्य रूपों के माध्यम से नहीं घटती वह शिक्षा सच्चे यथार्थ का बहुत घटिया विकल्प होती है। ऐसी शिक्षा बच्चे को बेचैन करने, उसकी ऊर्जा चूसने के अलावा कुछ नहीं कर सकती।

मेरा मानना है कि एक संस्था के रूप में स्कूल को मौजूदा सामाजिक जीवन का सरलीकरण करना चाहिए, उसे मौजूदा सामाजिक जीवन को एक भ्रूण रूप में सीमित करना चाहिए। वर्तमान जीवन इतना जटिल है कि उसके संपर्क में आते ही बच्चे का भ्रमित होना या भटकना स्वाभाविक है। जब वह मौजूदा जीवन के संपर्क में आता है तो या तो उसमें चल रही नाना गतिविधियों को देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है और फलस्वरूप व्यवस्थित प्रतिक्रिया की क्षमता भी गंवा देता है या इन नाना गतिविधियों से इतना उत्तेजित हो जाता है कि समय से पहले ही वह अपनी शक्तियों को आजमाने लगता है और या तो अनावश्यक तेजी से दक्षता प्राप्त करने लगता है या बिखरने लगता है।

मेरा मानना है कि इस तरह के सरलीकृत सामाजिक जीवन के रूप में स्कूली जीवन धीरे-धीरे घरेलू जीवन से पैदा होना चाहिए; कि स्कूली जीवन उन गतिविधियों को उठाए और आगे बढ़ाए जिनसे बच्चा अपने घर में पहले ही परिचित हो चुका है।

मेरा मानना है कि स्कूली जीवन में बच्चे को ये गतिविधियां करके दिखायी जानी चाहिएं और उन्हें इस तरह प्रस्तुत करना चाहिए कि बच्चा धीरे-धीरे उनके अर्थ सीखता जाए और उनके संबंध में अपनी भूमिका निभाने में सक्षम हो जाए।

मेरा मानना है कि यह एक मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है क्योंकि यही एकमात्र तरीका है जिससे बच्चे के विकास में निरंतरता सुनिश्चित की जा सकती है। यही एकमात्र तरीका है जिसके जरिए स्कूल में दिए जाने वाले नए विचारों को पिछले अनुभवों की एक पृष्ठभूमि प्रदान की जा सकती है। मेरा मानना है कि यह एक सामाजिक आवश्यकता भी है क्योंकि घर हमारे सामाजिक जीवन एक ऐसा रूप होता है जिसमें बच्चे को पाला-पोसा जाता है और जिसके संबंध में उसे नैतिक प्रशिक्षण मिला होता है। यह स्कूल की जिम्मेदारी है कि वो बच्चे के घरेलू जीवन से जुड़े मूल्यों के एहसास और गहराई को विस्तार दे।

मेरा मानना है कि ज्यादातर वर्तमान शिक्षा इसलिए नाकामयाब रहती है क्योंकि वह स्कूल को सामुदायिक जीवन के एक रूप के तौर पर देखने के इस मूलभूत सिद्धांत की उपेक्षा करती है। यह व्यवस्था स्कूल को एक ऐसे स्थान के रूप में देखती है जहां बच्चे को कुछ खास सूचनाएं दी जानी हैं, जहां कुछ खास सबक पढ़े जाने हैं या जहां कुछ खास आदतें गढ़ी जानी हैं। इन चीजों को एक सुदूर भविष्य के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। यानी, यह सोच इस मान्यता पर आधारित है कि बच्चे को ये चीजें इसलिए करनी चाहिए ताकि वह बाद में कुछ और कर सके। यानी यह शिक्षा व्यवस्था इन चीजों को सिर्फ एक तैयारी मानती है। इसका नतीजा यह होता है कि ये सारी बातें बच्चे के जीवन अनुभव का हिस्सा नहीं बन पातीं और इसलिए सच्चे अर्थों में शैक्षिक क्रियाएं नहीं बन पातीं।

मेरा मानना है कि नैतिक शिक्षा स्कूल को सामाजिक जीवन की एक पद्धति के रूप में देखने की इस अवधारणा के इर्द-गिर्द घूमती है कि श्रेष्ठतम और सबसे गहरा नैतिक प्रशिक्षण वही होता है जो व्यक्ति को कार्य और विचारों की एकता में औरों के साथ समुचित संबंध बनाने पर मिलता है। मौजूदा शिक्षा व्यवस्था जिस हद तक इस एकता को नष्ट या उपेक्षित करती है उतना ही उसमें कोई सच्ची, नियमित नैतिक प्रशिक्षण देने की संभावना कठिन या असंभव होती जाती है।

मेरा मानना है कि बच्चे के कामों को प्रेरित और नियंत्रित करने के लिए समुदाय के जीवन का सहारा लिया जाना चाहिए।

मेरा मानना है कि मौजूदा परिस्थितियों में शिक्षक की ओर से बहुत ज्यादा प्रेरणा और नियंत्रण मिलता है क्योंकि स्कूल को सामाजिक जीवन का रूप मानने के विचार को नजरअंदाज किया जाता है।

मेरा मानना है कि स्कूल में अध्यापक का स्थान और कार्य इसी आधार पर समझा जाना चाहिए। स्कूल में अध्यापक इसलिए नहीं होता कि वह कुछ खास तरह के विचार थोपे या बच्चे में कुछ खास तरह की आदतें पैदा करें बल्कि

वह वहां समुदाय का एक सदस्य होता है। इस नाते उसकी जिम्मेदारी ये है कि वह बच्चे को प्रभावित कर सकने वाली चीजों को चिन्हित करे और बच्चे को ऐसे प्रभावों से सही ढंग से निपटने में सहायता दे।

मेरा मानना है कि स्कूल का अनुशासन एक समग्र के रूप में स्कूल के जीवन से तय होना चाहिए न कि सीधे शिक्षक द्वारा तय किया जाना चाहिए।

मेरा मानना है कि शिक्षक की जिम्मेदारी अपने व्यापक अनुभव और परिपक्व विवेक के आधार पर केवल यह निर्धारित करने की है कि बच्चे में जीवन का अनुशासन किस तरह पैदा होगा।

मेरा मानना है कि बच्चे का दर्जा तय करने और उसकी उत्तीर्णता का सवाल भी इसी कसौटी पर तय किया जाना चाहिए। इम्तिहान केवल तभी उपयोगी होते हैं जब वे सामाजिक जीवन के लिए बच्चे की योग्यता को आंक सकते हों और यह बता सकें कि समाज में वह किस स्थान पर सबसे उपयोगी हो सकता है और कहां उसे सबसे ज्यादा मदद मिल सकती है।

### तीसरा सवाल : शिक्षा की विषय-वस्तु

मेरा मानना है कि बच्चे का सामाजिक जीवन उसके सारे प्रशिक्षण या विकास के संकेंद्रण या सहसंबंध का आधार होना चाहिए। बच्चे का सामाजिक जीवन उसकी सारी चेष्टाओं और उसकी सारी उपलब्धियों में एक अचेत परस्पर संबंध और पृष्ठभूमि तय करता है।

मेरा मानना है कि स्कूली पाठ्यचर्या की विषयवस्तु ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक जीवन की एक आदिम अचेत समरसता से क्रमशः विभेदीकरण को रेखांकित करे।

मेरा मानना है कि अगर हम अचानक या स्वाभाविक प्रक्रिया का पालन किए बिना बच्चे को बहुत सारे विविध अध्ययनों, पढ़ने-लिखने की क्षमता, भूगोल, इतिहास आदि का प्रशिक्षण देने लगते हैं तो ऐसा करना उसके स्वभाव का हनन है और इससे श्रेष्ठतम नैतिक परिणामों की संभावना कठिन हो जाती है।

मेरा मानना है कि इसीलिए विज्ञान, साहित्य, इतिहास या भूगोल आदि को स्कूली विषयों के बीच सहसंबंध का वास्तविक केंद्र नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए केवल बच्चे की सामाजिक गतिविधियों को ही केंद्र बनाया जा सकता है।

मेरा मानना है कि शिक्षा को विज्ञान या कथित प्राकृतिक अध्ययन में समेकित नहीं किया जा सकता क्योंकि मानवीय गतिविधियों को निकाल दिया जाए तो स्वयं प्रकृति भी कोई समुच्चय नहीं है; स्वयं प्रकृति भी काल और परिवेश में स्थिति नाना वस्तुओं का मिश्रण है। अगर आप इस प्रकृति को अपने काम का केंद्र बनाने का प्रयास करते हैं तो एक तरह से आप संकेंद्रण की बजाय विकिरण के सिद्धांत को लागू करने लगते हैं।

मेरा मानना है कि साहित्य हमारे सामाजिक अनुभव की प्रतिअभिव्यक्ति और व्याख्या होती है। लिहाजा बच्चे को साहित्य अनुभव से पहले नहीं बल्कि अनुभव के बाद ही मिलना चाहिए। इसका मतलब है कि साहित्य को इस समुच्चय का आधार नहीं बनाया जा सकता हालांकि उसे इस एकीकरण का सार रूप माना जा सकता है।

मेरा मानना है कि इतिहास वहीं तक शैक्षिक महत्व का विषय है जहां तक वह सामाजिक जीवन व विकास के चरणों को प्रस्तुत कर सकता है। सामाजिक जीवन के संदर्भ में उस पर नियंत्रण जरूर रखा जाना चाहिए। जब उसे केवल इतिहास के रूप में लिया जाता है तो उसे सुदूर अतीत में फेंक दिया जाता है और वह मृत व निष्क्रिय बन जाता है। अगर उसे मनुष्य के सामाजिक जीवन और प्रगति के रोजनामचे के तौर पर देखा जाए तो उसमें एक से एक अर्थ पैदा हो जाते हैं। फिर भी, मेरा मानना है कि जब तक बच्चा सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से हिस्सा नहीं लेता तब तक इतिहास में यह अर्थ नहीं ढूंढा जा सकता।

मेरा मानना है कि जिस सृजनात्मक आधार पर सभ्यता का विकास हुआ है उसी प्रकार शिक्षा का प्राथमिक आधार बच्चे की सक्रिय शक्तियों में होना चाहिए।

मेरा मानना है कि बच्चे को उसकी सामाजिक विरासत से लैस करने का एकमात्र तरीका यही है कि उसे उन आधारभूत गतिविधियों को करने की क्षमता प्रदान की जाए जिन्होंने सभ्यता को यह रूप प्रदान किया है।

मेरा मानना है कि इसीलिए तथाकथित अभिव्यक्तिपरक या सृजनात्मक गतिविधियों को इस सहसंबंध का आधार बनाया जाना चाहिए।

मेरा मानना है कि इससे स्कूल में खाना पकाने, सिलाई-कढ़ाई, शारीरिक शिक्षण आदि को उचित स्थान मिलता है।

मेरा मानना है कि ये ऐसे विषय नहीं हैं जिनको विश्राम या राहत के तौर पर या अतिरिक्त उपलब्धि के नाम पर दूसरे विषयों से ऊपर जगह दी जानी चाहिए। मैं ये मानता हूँ कि ये गतिविधियाँ मूलभूत सामाजिक क्रियाकलापों का प्रतिनिधित्व करती हैं इसलिए इसमें कोई दिक्कत नहीं है कि पाठ्यचर्या के ज्यादा औपचारिक विषयों से बच्चे को इन्हीं गतिविधियों के माध्यम से परिचित कराया जाए।

मेरा मानना है कि विज्ञान का अध्ययन उसी हद तक शिक्षापरक होता है जब तक वह उन सामग्रियों और प्रक्रियाओं को सामने लाने में सक्षम हो जोकि सामाजिक जीवन को ऐसा रूप प्रदान करती हैं।

मेरा मानना है विज्ञान की वर्तमान शिक्षा में एक बड़ी कठिनाई यह है कि बच्चों को जो सामग्री उपलब्ध कराई जाती है वह विशुद्ध वस्तुपरक रूप में होती है या उसे एक नए अजूबा अनुभव के रूप में देखा जाता है और ये अपेक्षा की जाती है कि बच्चा उसे पहले से हासिल अनुभवों में जोड़ सकता है। सच यह है कि विज्ञान इसलिए महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वह बच्चे के पास पहले ही उपलब्ध अनुभवों की व्याख्या और उनको नियंत्रित करने की योग्यता प्रदान करता है। लिहाजा, उसे नए विषय के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसे साधन के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए जो पिछले अनुभवों में शामिल कारकों को सामने ला सकता है और एक ऐसे साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए जिसकी मार्फत उस अनुभव को ज्यादा आसान और प्रभावी ढंग से नियमित किया जा सकता है।

मेरा मानना है कि साहित्य और भाषा के अध्ययन अपना बहुत सारा महत्व इसलिए गंवा देते हैं क्योंकि हमने उनके सामाजिक आयामों को समाप्त कर दिया है। शैक्षिक पुस्तकों में भाषा को लगभग हमेशा ही केवल विचारों की अभिव्यक्ति के साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह सही है कि भाषा एक तार्किक उपकरण है मगर बुनियादी और प्राथमिक रूप से यह एक सामाजिक उपकरण है। भाषा संचार का उपकरण है। यह एक ऐसा साधन है जिसके जरिए व्यक्ति दूसरों के साथ विचारों और भावनाओं का आदान-प्रदान करता है। जब भाषा को केवल व्यक्तिगत सूचनाएं हासिल करने का साधनमात्र माना जाता है या उसे यह दिखाने का साधन माना जाता है कि उसने क्या सीखा है तो वह अपना सामाजिक लक्ष्य और दिशा खो देती है।

मेरा मानना है कि इसीलिए आदर्श स्कूली पाठ्यचर्या में विषयों का कोई क्रम नहीं हो सकता। अगर शिक्षा जीवन है तो शुरू से ही प्रत्येक जीवन का एक वैज्ञानिक आयाम होता है; उसमें कला व संस्कृति का और संचार का भी एक आयाम होता है। इसीलिए, यह कहना सही नहीं होगा कि किसी एक कक्षा के लिए तो महज लिखना और पढ़ना ही सही विषय हैं जबकि साहित्य या विज्ञान का सूत्रपात बाद की किसी कक्षा में किया जा सकता है। मेरा मानना है कि असली प्रगति इन विषयों के इस क्रम से तय नहीं होगी बल्कि अनुभव के प्रति रवैये और उसमें नई रुचियों के जन्म से प्राप्त होगी।

मेरा मानना है कि शिक्षा को अनुभवों की निरंतर पुनर्रचना के रूप में देखा जाना चाहिए; कि शिक्षा की प्रक्रिया और लक्ष्य, दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं।

मेरा मानना है कि कथित रूप से शिक्षा के लक्ष्य और मानकों की पूर्ति करने के लिए शिक्षा के बाहर कोई भी लक्ष्य तय करना शैक्षिक प्रक्रिया को उसके अर्थ से वंचित कर देना होगा। ऐसी चेष्टा हमें बच्चे के संबंध में कृत्रिम और बाहरी प्रेरणाओं पर निर्भर होने के लिए प्रेरित करती है।

#### चौथी आस्था : पद्धति का स्वरूप

मेरा मानना है कि पद्धति का सवाल अंततः इस बात पर आकर सिमट जाता है कि बच्चे की शक्तियों और रुचियों के विकास का क्रम क्या हो। सामग्री की प्रस्तुति और प्रयोग का कानून बच्चे के अपने स्वरूप का अंतर्निहित कानून है। इसीलिए, मैं मानता हूँ कि शिक्षा को आगे बढ़ाने वाली भावना को निर्धारित करने में निम्नलिखित वक्तव्य सर्वाधिक महत्व के हैं :

1. मेरा मानना है कि बच्चे के स्वभाव के विकास में निष्क्रिय पक्ष से पहले सक्रिय पक्ष आता है; सचेत छवि से पहले अभिव्यक्ति आती है; इंद्रियों के विकास से पहले पेशियों का विकास आता है; सचेत संवेदना से पहले गति आती है। मेरा मानना है कि चेतना मूल रूप से संप्रेषक या आवेगशील होती है; कि चेतन अवस्थाएं खुद को क्रिया रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करती हैं।

मेरा मानना है कि इस सिद्धांत की उपेक्षा स्कूल के कामों में समय और शक्ति की बर्बादी का एक बड़ा कारण है। स्कूल में बच्चे को एक निष्क्रिय, ग्रहणशील या दबू दशा में धकेल दिया जाता है। परिस्थितियां कुछ ऐसी होती हैं कि उसे अपने स्वभाव के अनुसार चलने की छूट ही नहीं दी जाती। इसके चलते घर्षण और व्यर्थता सामने आती है।

मेरा मानना है कि विचार (बौद्धिक और तर्कशील प्रक्रियाएं) क्रियाओं से निकलते हैं और क्रियाओं पर बेहतर नियंत्रण के उद्देश्य से अस्तित्व में आते हैं। जिसे तर्कशीलता कहा जाता है वह बुनियादी तौर पर व्यवस्थित या प्रभावी क्रियाओं का ही नियम है। तर्क की शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति विकसित करने की चेष्टा में जब क्रिया के लिए अपनाए जा रहे साधनों और चयन पर ध्यान नहीं दिया जाता है तो हमारी पद्धति बहुत दोषपूर्ण होती है। परिणामस्वरूप, हम बच्चे के सामने मनमाने प्रतीक खड़े कर देते हैं। यह ठीक है कि मानसिक विकास में प्रतीक बहुत अनिवार्य होते हैं मगर उनकी उपयोगिता यही है कि वह हमारी चेष्टाओं को व्यर्थ नहीं जाने देते। लेकिन अगर उन्हें संदर्भ से काटकर अपने आप में प्रस्तुत कर दिया जाए तो वे बाहर से थोप दिए गए निरर्थक और मनमाने विचारों का ढेर बनकर रह जाते हैं।

2. मेरा मानना है कि छवि शिक्षा का बड़ा जबर्दस्त उपकरण होती है। बच्चे के सामने जो विषय प्रस्तुत किए जाते हैं उनमें से बच्चा जो हासिल करता है वह सिर्फ एक छवि होती है जिसे बच्चा उस विषय के बारे में खुद गढ़ता है। मेरा मानना है कि वर्तमान में 90 प्रतिशत ऊर्जा बच्चे को कुछ चीजें सिखाने पर केंद्रित की जा रही है जिसे अगर यह देखने पर खर्च किया जाता कि बच्चा सही छवियां बना रहा है या नहीं, तो शिक्षा का काम बहुत आसान हो जाता।

मेरा मानना है कि पाठों की तैयारी और प्रस्तुति पर अभी जितना ध्यान दिया जाता है अगर उसे बच्चे की छवि निर्माण की शक्तियों के प्रशिक्षण में और यह सुनिश्चित करने में लगाया जाता है कि वह लगातार अपने अनुभव में आने वाली वस्तुओं की निश्चित, सजीव और फैलती छवियां बनाने में सक्षम हो तो काफी बेहतर नतीजे हासिल किए जा सकते हैं।

3. मेरा मानना है कि बच्चे की रुचियां उसकी बढ़ती शक्ति का संकेत और लक्षण होती हैं। मेरा मानना है कि वे उभरती क्षमताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। फलस्वरूप, उसकी रुचियों पर लगातार और सावधानी से नजर रखना शिक्षक के लिए सबसे ज्यादा महत्व का काम है।

मेरा मानना है कि इन रुचियों को इस बात का प्रमाण माना जाना चाहिए कि बच्चा विकास की किस अवस्था में पहुंच गया है।

मेरे विचार में वे इस बात की भविष्यवाणी होती हैं कि अब बच्चा किस अवस्था में पहुंचने वाला है।

मेरा मानना है कि बचपन की रुचियों को लगातार और संवेदनशील ढंग से देखते रहने से ही वयस्क बच्चे के जीवन में प्रवेश कर सकते हैं और यह देख सकते हैं कि उसका जीवन किन चीजों के लिए तैयार है और वह किन चीजों पर फौरन और ज्यादा सार्थक ढंग से काम कर सकता है।

मेरा मानना है कि बच्चे की रुचियों का न तो मजाक उड़ाया जाना चाहिए और न ही उन्हें दबाया जाना चाहिए। उसकी रुचियों को दबाने का मतलब है बच्चे के ऊपर वयस्क को मढ़ देना और इस तरह उसकी बौद्धिक उत्सुकता और चौक्कनेपन को कमजोर करना, उसकी पहलकदमी को दबाना और उसकी रुचि को बेजान बना देना। बच्चे की दिलचस्पियों का उपहास करना स्थायी की जगह क्षणिक उद्वेगों को स्थापित कर देने जैसा है। बच्चे की रुचि हमेशा नीचे दबी किसी शक्ति का संकेत होती है; महत्वपूर्ण बात यही है कि इस शक्ति को अनावृत्त किया जाए। उसकी रुचियों का मजाक उड़ाना सतह के नीचे पहुंच पाने में विफलता का संकेत है। इसका निश्चित परिणाम ये होता है कि आप उसकी सच्ची रुचि के स्थान पर सनक और तरंगों को स्थापित कर देते हैं।

4. मेरा मानना है कि भावनाएं क्रियाओं का विलोम होती हैं।

मेरा मानना है कि भावनाओं से संबंधित गतिविधियों को छोड़कर केवल भावनाओं को उत्तेजित या सक्रिय करने की चेष्टा का मतलब है कि आप एक अस्वस्थ और निष्प्राण मनोदशा पैदा कर रहे हैं।

मेरा मानना है कि अगर हम अच्छे, सत्य और सुंदर मूल्यों के अनुरूप क्रिया और विचार की सही आदतें विकसित करने में सफल हो जाते हैं तो भावनाएं प्रायः खुद-ब-खुद रूप लेने लगती हैं।

मेरा मानना है कि निष्प्राणता और तेजहीनता, औपचारिकता और रूटीन के बाद हमारी शिक्षा को सबसे बड़ा खतरा भावुकतावाद से ही पैदा हो रहा है।

मेरा मानना है कि यह भावुकतावाद भावनाओं को क्रियाओं से अलग करने की चेष्टाओं का अनिवार्य फल है।

### पांचवा सिद्धांत : स्कूल और सामाजिक प्रगति

मेरा मानना है कि शिक्षा सामाजिक प्रगति और सुधार की आधारभूत पद्धति है। मेरा मानना है कि ऐसे सुधार जो केवल कानून पर आश्रित रहते हैं या किसी तरह की सजा के डर पर आश्रित रहते हैं या यांत्रिक अथवा बाहरी व्यवस्था में बदलाव पर आश्रित होते हैं वे क्षणिक या व्यर्थ होते हैं।

मेरा मानना है कि शिक्षा सामाजिक चेतना में हिस्सेदारी की प्रक्रिया को नियमित करने का काम है। इस सामाजिक चेतना के आधार पर व्यक्तिगत क्रियाओं को व्यवस्थित करना सामाजिक पुनर्निर्माण का एकमात्र निश्चित तरीका है। मेरा मानना है कि इस अवधारणा में व्यक्तिपरक और समाजवादी आदर्शों, दोनों को पर्याप्त ध्यान दिया गया है। यह अवधारणा व्यक्तिपरक है क्योंकि इसमें जीवन के एकमात्र सच्चे आधार के तौर पर एक खास तरह के चरित्र निर्माण को मान्यता दी जा रही है। यह समाजवादी है क्योंकि यह अवधारणा इस बात को रेखांकित करती है कि यह सही चरित्र केवल व्यक्तिगत छवियों, उदाहरणों या उकसावे से नहीं गढ़ा जा सकता बल्कि बल्कि यह व्यक्ति के चारों तरफ मौजूदा खास संस्थागत या सामुदायिक रूपों से प्रभावित होता है और सामाजिक व्यवस्था स्कूल के जरिए नैतिक परिणामों को निर्धारित कर सकती है।

मेरा मानना है कि एक आदर्श स्कूल में व्यक्तिपरक और संस्थागत, दोनों आदर्श एक-दूसरे से बंधे होते हैं।

मेरा मानना है कि शिक्षा के प्रति समुदाय का दायित्व उसका सबसे बड़ा नैतिक दायित्व है। कानून और सजा के जरिए, सामाजिक बहस-मुबाहिसे व चर्चा के जरिए समाज खुद को नियंत्रित कर सकता है और एक ज्यादा व्यवस्थित शक्ति दे सकता है। परंतु शिक्षा के जरिए समाज अपने उद्देश्य तय कर सकता है, अपने साधन व संसाधन जुटा सकता है और इच्छित दिशा में निश्चित गति और किफायत से बढ़ सकता है।

मेरा मानना है कि जब समाज इस दिशा में निहित संभावनाओं को रेखांकित कर लेता है और इस बात को समझ लेता है कि ये संभावनाएं कौन-से दायित्वों को जन्म देती हैं, तो समय, ध्यान, और धन जैसे संसाधनों पर विचार करना आसान हो जाता है।

मेरा मानना है कि जो लोग शिक्षा में रुचि रखते हैं उनकी जिम्मेदारी है कि वे इस बात पर जोर दें कि स्कूल को सामाजिक प्रगति और सुधार का सबसे प्राथमिक और सबसे प्रभावी साधन माना जाए ताकि समाज को इस बात के

प्रति जागृत बनाया जा सके कि स्कूल किसलिए चलाया जाता है, समाज को इस जरूरत का एहसास कराया जा सके कि शिक्षकों को अपना काम करने के लिए पर्याप्त साधन मिलने चाहिए।

मेरा मानना है कि इस तरह से निर्धारित की गई शिक्षा मानव अनुभव में विज्ञान और कला का सबसे अंतरंग मिश्रण होती है।

मेरा मानना है कि मानवीय शक्तियों को शक्ल देने और उन्हें सामाजिक सेवाओं के अनुकूल बनाने की यह कला ही उच्चतम कला है। यह ऐसी कला है जो श्रेष्ठतम कलाकारों की मांग करती है और ऐसी सेवा के लिए कोई भी अंतर्दृष्टि, साहनुभूति, प्रयास, कार्यकारी शक्ति बहुत बड़ी नहीं मानी जा सकती।

मेरा मानना है कि मनोविज्ञान के विकास से व्यक्तिगत संरचना और विकास के नियमों की बेहतर समझ हासिल हुई है। समाज विज्ञानों के विकास ने लोगों की सही व्यवस्था के ज्ञान में इजाफा किया है जिसके चलते अब तमाम वैज्ञानिक संसाधनों का शिक्षा के हित में प्रयोग किया जा सकता है।

मेरा मानना है कि जब विज्ञान और कला इस तरह एक-दूसरे से मिल जाते हैं तो मानवीय क्रियाओं का सर्वोच्च उद्देश्य हासिल कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति में इन्सानी आचरण के सच्चे झरने फूटते हैं और मानव स्वभाव श्रेष्ठतम सेवाएं दे सकता है।

और अंत में, मेरा मानना है कि अध्यापक सिर्फ व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने में सक्रिय नहीं रहता बल्कि वह एक समुचित सामाजिक जीवन को गढ़ने में सक्रिय होता है।

मेरा मानना है कि प्रत्येक शिक्षक को अपने दायित्व की प्रतिष्ठा का एहसास होना चाहिए; उसे यह एहसास होना चाहिए कि वह एक समाज-सेवक है जिसे एक उचित सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने और सही सामाजिक विकास सुनिश्चित करने के लिए नियुक्त किया गया है।

मेरा मानना है कि इस भांति शिक्षक ईश्वर का सच्चा पैगम्बर होता है और ईश्वर के सच्चे साम्राज्य का द्वार खोलता है।